15273

15273

श्रीहरिः

श्रीउपदेशामृतसार

रचयिता
श्री १०८ श्री राजकिशोरीवरशरणजी
(स्वामी परमानंदजी महाराज रहस्य प्रमोद भवन)
जैपुर मंदिर, श्रीजानकी घाट
श्रीअयोध्याजी

३२६

श्रीउपदेशामृतसार

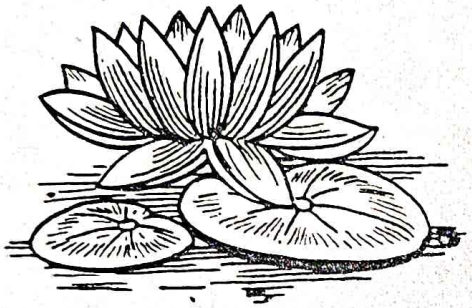

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
15273
अयोध्या
श्री माणिराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

प्रकाशक

श्री मदनलाल चितलांगिया

कलकत्ता

श्री १०८ श्री राजकिशोरीवरशरणजी

(स्वामी परमानंदजी महाराज रहस्य प्रमोद भवन.)

जैपुर मंदिर, श्रीजानकी घाट

श्रीअयोध्याजी

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
अयोध्या
श्री राम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

।। श्रीसीतारामाभ्यांनमः ।।

उपदेशामृत-सिद्धान्त-सार-बावनी

(१)

जगत वासना अति दुख दाई ।
गुरु, हरि, जन सेवत मिटि जाई ।।

भावार्थ—सांसारिक वस्तुओं तथा भोगों की चाहना परिणाम में अत्यन्त दुःख को देने वाली है। किन्तु श्री गुरु, श्री हरि एवं श्री हरिभक्तजनों की शुद्धभाव से सेवा करने से नष्ट हो जाती है। तत्र प्रमाण पृथक्-पृथक् पदार्थ का—

वासना का स्वरूप यथा—

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्यनिखन्यन्ते हृदये शोक शंकवः ।।

वासना की निवृत्ति का उपाय—

तदेव गति दुःखानामास्पदेऽत्र भवार्णवे ।
भवतां कथ्यते सत्यं विष्णुरेकः परायणः ।।

विष्णु पुराणे १।१७।६६-७०

वासना जनित माया का प्रसार तथा उससे निवृत्ति का उपाय—

श्रीमद्भगवद्गीतायाम् अ० ८।१६

श्रीमुखवाक्यं—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।

गुरुसेवन का फल——

श्रीमद्भागवत यथा

नृ देह माद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्ण धारम्।

पुनः श्री हरिसेवा का फल यथा——

यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुताप समन्वितः।
विमुक्तएव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णु परो यतः ।।

नारद पुराणे

श्री भक्तों के सेवन का फल यथा——

यावत्त्वत्पादभक्तानां संगसौख्यं नविन्दति।
तावत्संसार दुःखौघान्ननिवर्त्तेन्नरः सदा ।।१।।

अध्यात्मे

(२)

सत संगति सत-सुख की मूला।
भगवत् - स्रूप हरणि भव शूला ।।

भावार्थ——इस संसार में सज्जन पुरुषों की संगति ही यथार्थ-सुख प्राप्ति की जड़ है। यह संसार के समस्त दुःखों को मिटा देने वाली साक्षात् श्री भगवत्स्वरूपा है अर्थात् लौकिक, पारलौकिक दुःखों का नाश करनेवाला ब्रह्मतत्त्व है।

प्रमाण श्री विनयपत्रिकायां यथा——

वेद पयसिन्धु सुविचार मन्दरमहा अखिलमुनिवृन्द निर्मथनकर्ता।
सार सत्संगमुद्धृत्य इति निश्चितं वदति श्री कृष्णवैदर्मि भर्त्ता ।।

पुनः—

शोक, सन्देह, भय हर्ष, तम, तर्ष-गण साधु सद्युक्ति विच्छेद कारी ।।
इति।।

तथा रामचरितमानसे यथा—

सत संगति मुद मंगल मूला ।।

सत्-सुख का स्वरूप भगवत् स्वरूपमयी का प्रमाण यथा—
श्रीमद्भगवद्गीतायाम् अध्याय १४।२०

ब्रह्मणोहि प्रतिष्ठाह ममृतस्या व्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ।।

हे अर्जुन ! उस अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्यधर्म का और अखण्ड एक रस आनन्द का, मैं ही आश्रय हूँ अर्थात् उपरोक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वतधर्म तथा ऐकान्तिक सुख, यह सब मेरे ही नाम हैं, इस कारण इनका परम आश्रय हूँ। किन्तु यह ब्रह्मतत्त्व जो सर्वकाल में एक रस आनन्दरूप है, एकमात्र सत्संग से ही प्राप्त होता है ।।२।।

(३)

प्रभु में लगनो ज्ञान वर, तजनो अति अज्ञान ।
भक्ति विना तन पोसनो, केवल नर्क निदान ।।

भावार्थ—श्रीभगवान की सेवा, भजन में तत्परता के साथ लगना अर्थात् भगवान् का निमित्त रखकर भगवद-र्प्पण बुद्धि से निष्काम करना ही श्रेष्ठ ज्ञान है और भगवान् की विस्मृति रखते हुए केवल स्वार्थ बुद्धि से कर्म करना अत्यन्त अज्ञान है ; क्योंकि विना

भगवत्सम्बंध-स्थापित किये अर्थात् अपने परम-प्रिय भगवान् को समर्पण किये विना यावत् वस्तुओं का ग्रहण करके प्रयोग में लाना तथा शरीर का लालन-पोषण करना सवासिक-कर्म होने से चाहे वह पुण्यमयी हों या पापमयी, समस्त कर्म अन्त में संसार में आवा-गमन के कारण बन जाने से वह नरक के समान दुखदाई हैं ।।

ज्ञानियों का मार्ग प्रमाण श्री मद्भगवद्गीतायाम्—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिज्ञान निर्धूतकल्मषाः ।।
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्प्पणम् ।।अ० ९।२७।।

अज्ञानियों की दशा—

हरि पूजा विहीनाश्च वेद विद्वेषिणस्तथा ।
गोद्विजद्वेष निरता राक्षसाः परि कीर्तिताः ।।

ना० पू० ३७।५ तथा

अनेक चित्त विभ्रान्ता मोहजाल समावृताः ।
प्रसक्ताः काम भोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।

गीतायाम् अ० १६।१६।।३।।

(४)

सार बात गुन धारन करिये ।
सहज-भयंकर-भव-निधि तरिये ।।

सार बात यथा—

भावार्थ—"सार रूप रघुपति-गुण ग्रामा।
लीला, चरित, नाम परधामा"।।

तथा गुण यथा—

सत्य, शील, दया, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, विवेक, वैराग्य, भगवत्स्मरण, पूजन, तप, दान, जप, यज्ञादि कर्म आदि किन्तु यह सब कर्म निर्वासिक होना चाहिए।

सार बात तथा दिव्य गुणों को अपने आचरण में लाना चाहिए अर्थात् जो भी सच्छास्त्र-सम्मत दिव्य गुणों को धारण किया जावेगा, तो अनायास इस भयावह-संसार-समुद्र से जीव पार हो जावेगा।।४।।

दुर्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि।
तल्लब्ध्वा पर लोकार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः।।३२।४७
दृष्टः स्मृतः पूजितोषाध्यातः प्रणमितोऽपिवा।
समुद्धरति गोविन्दो दुस्तराद् भवसागरात्।।३९।७।।
स्वपन् भुञ्जन् व्रजंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठंश्च वदंस्तथा।
चिन्तयेद्यो हरेर्नाम तस्मै नित्यं नमो नमः।।३९।८।।

(५)

प्रभु गुण-गण विन जन-सतसंगा।
होय न भव-भय-दारिद भंगा।।

भावार्थ—विना श्री भगवान् के गुणों के वर्णन-कीर्तन एवं श्री भगवद्भक्तों के सतसंग के जीवात्मा का संसार

का भय (आवागमन, जन्म-मरण) तथा सांसारिक वासना रूपी दरिद्र नहीं मिटता अर्थात् जीव का संसार में बार-बार जन्म लेने व मरने का दुःख विना श्री भगवद्भक्तों-द्वारा कथित-भगवत्कथा एवं भगवद्गुण-कीर्त्तन के दूर नहीं होता।

तत्र प्रमाण—विनयपत्रिकायाम् यथा—

रघुपतिभक्ति संत-संगति विन को भव-त्रास मिटावै।

पुनः नारदीये पूर्व

ये भजन्तिस्पृहाशून्या हरिभक्तान् हरिं तथा।
त एव भुवनं सर्वं पुनन्ति स्वाङ्घ्रि पांशुना ।।३९।६४
अच्युतानन्द गोविन्द नामोच्चारण भेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।३४।६१

मानसे यथा—

विन सत्संग न हरिकथा, तेहि विन मोह न भाग।
मोह गये विन राम पद, होय न दृढ़ अनुराग ।।

विनयपत्रिकायाम्

श्रुति सिद्धान्त पुराण सबको मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिये ।।५।।

(६)

घर में रह प्रभु की सुधि राखो।
गृह बैठे परमाँनद चाखो ।।

भावार्थ—गृहस्थाश्रम में रहते हुए समस्त आश्रम-सम्बन्धी (विधिवत्-निष्कामपूर्वक) कर्म करे, किन्तु प्रत्येक

कर्म-धर्म पालते समय श्री भगवान् का स्मरण रक्खे, किसी क्षण भी विस्मरण न हो, तो इसके परिणाम-स्वरूप भगवत्प्राप्ति रूपी परमानन्द-दायिनी भगवान् की भक्ति-सुख का आस्वादन प्राप्त होगा अर्थात् घर बैठे ही भगवद्भक्ति प्राप्त हो जायगी ।।

तत्रप्रमाणनारदीयेपूर्वार्द्धे ३८।१४

सङ्गात्स्नेहाद्भयाल्लोभादज्ञानाद्वापि योनरः ।
विष्णोरुपासनं कुर्यात्सोऽक्षयं सुख मश्नुते ।।
कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमादेत्कुटुम्व्यपि ।
विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ।।

पुनः विष्णुपुराणे १।१८।२४

सम्पदैश्वर्य माहात्म्य ज्ञान सन्तति कर्मणाम् ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।

पुनः श्री भगवद्गीतायाम्

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।१२।६।।

(७)

जब लगि निज-स्वरूप नहिं जानै ।
तब लगि मिथ्या - सुख सुख मानै ।।

भावार्थ—जीवात्मा जबतक अपने वास्तविक-स्वरूप को नहीं पहचानता है, तबतक मिथ्यासुखों (अर्थात् इन्द्रियों तथा उनके विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले

सम्पूर्ण भोगों) को ही अपना सुख मानता है। वास्तव में इन्द्रियजन्य विषयों से उत्पन्न सुखों के अतिरिक्त ज्ञान व कर्मकाण्ड का सहारा लेकर कर्मों से उत्पन्न होनेवाले सुख भी परिणामतः मिथ्यासुख ही हैं।

यथा—

यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः।
नवैदृष्टु महं शक्यो मद्भक्ति विमुखैः सदा ।।

भेदाभेद सम्प्रदायाचार्य श्री निम्बार्क स्वामी कथित जीव का स्वरूप यथा—

ज्ञानस्वरूपञ्चहरेरधीनं . शरीरसंयोगवियोगयोग्यम् ।
अणुंहिजीवं प्रति देहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्त माहुः ।।

तथा मानसे यथा—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी । चेतन अमल सहज सुखराशी ।।

अर्थात्—जीव का और श्री हरि का अनादिकाल से सनातन संबन्ध है, किन्तु अंश होने से सदैव अंशी के अधीन है। अणु है। ज्ञान के संकुचित हो जाने के कारण अपने शुद्ध-स्वरूप को भूलकर मायिक अहंकार में पड़कर नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर संसार में भटकता रहता है। जब उक्त सम्बन्ध के कारण विशुद्ध अहंकार दास भाव (कैंकर्य-भाव) होने का होता है, तब श्री हरि के प्रति अपनी योग्यता के अनुसार नानाभाव जोड़ कर कैंकर्य-परायण होता है और अपने स्वरूप को जान जाता है।७।।

(८)

भक्त संग बिन भक्ति न होई।
भक्ति बिना सत-सुख नहिं कोई ।।

भावार्थ—विना भगवद्भक्तों की संगति के भक्ति का उदय नहीं होता और जबतक भगवद्भक्ति का प्रकाश नहीं होता, जीवात्मा को लौकिक व पारलौकिक कोई भी यथार्थ-सुख प्राप्त नहीं होता। वास्तव में शुष्क-कर्मों व ज्ञानादिकों के करने से जो सुख प्राप्त होता है, वह सच्चा-सुख नहीं है। सच्चा सुख तो भगवत् प्रति नाना भावों से सेवा से प्राप्त सुख है।

तत्र प्रमाण विनयपत्रिकायाम्—

भगवतकृपा सन्त संगति बिन जिव सुख कबहुँ न पावै ।।

रुद्रयामले—

ये नराधम लोकेषु रामभक्ति पराङ्मुखाः।
जपं तपं दया शौचं शास्त्राणामवगाहनम् ।।
सर्वं वृथा विना येन श्रृणुत्वं पार्वति प्रिये ।।

सत्योपाख्याने सूतवाक्यं—

विनाभक्ति नमुक्तिश्च भुजमुत्थायचोच्यते ।।

श्रीमद्भगवद्गीता में सत्-सुख का स्वरूप यथा—

अ० २।२१-२२

सुख मात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ।।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ।।८।।

(९)

चार धाम में सो नहिं पइये ।
जो सत-संग मध्य सुख लइये ।।

भावार्थ—जो अविचल-शान्ति-सुख साधुओं की सत्संगति से प्राप्त होता है, वह चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित चारों धामों के भ्रमण करने से नहीं मिलता, कारण यह कि सर्वत्र विचरने से विविध प्रकार के दृश्य देखने में आते हैं और नानाभाँति की प्रकृति के जीव तथा मनुष्यों का मिलन होता है, जिससे चित्त में चंचलता आती है और मन वासनाओं से दूषित हो जाता है, जो संसार के आवागमन का कारण बन जाता है। चित्त में वासनाओं का उठना ही परम-दुःख का रूप है। इसी से सतसंग चारों धामों के घूमने से श्रेष्ठ इस लिए कहा गया है कि चित्त की चंचलता और मन की वासनाओं के शमन का सरल उपाय सन्तों की संगति से सहज ही उपलब्ध हो जाता है।

यथा मान से—

मति, कीरति, गति, भूति, भलाई । जब जेहिजतन जहाँ जो पाई ।।
सो जानव सत्संग प्रभाऊ । लोकहु, वेद न आन उपाऊ ।।

तथा—

विन सतसंग भक्ति नहिं होई । ते तव मिलै द्रवहि जब सोई ।।

पुनः नारदीये—

ये मानवा हरिकथाश्रवणास्तदोषाः कृष्णाङ्घ्रि पद्मजने रतचेतनाढ्या ।
तेवै पुनन्ति च जगन्ति शरीर संगात् ।
सम्भाषणादपि ततो हरिरेवपूज्यः ।।
हरिपूजापरा यत्र महान्तः शुद्धबुद्धयः ।
तत्रैव सकलं भद्रं यथानिम्ने जलं द्विज ।।९।।

ना० पूर्व ४०।५३-५४ ।।

(१०)

द्विभुज प्रभू सब सों पर कहिये ।
सब में तत्त्व उन्हीं को लहिये ।।

भावार्थ—द्विभुज प्रभु श्री राम जी सब से पर शास्त्रों में वर्णन किये गये हैं। सम्पूर्ण प्राणी मात्र में उन्हीं की सत्ता है अर्थात् समस्त सचराचर प्राणी-वर्गों में श्री राम जी की ही विभूति एक अंशमात्र से हैं।

श्रीरामचरितमानसे यथा—

जगत प्रकाश प्रकाशक रामू । मायाधीश ज्ञान गुणधामू ।।

पुनः—

विषय करण सुर जीव समेता । सकल एक ते एक सचेता ।।
सब पर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवध पति सोई ।।

तथा श्रुतिः—

रामात्सञ्जायते कामः कामाद्विश्वं प्रजायते ।
तस्माद्घनभूतास्सर्वे द्विभुजा मूल रूपिणः ।।

आनन्दोहि द्विधा प्रोक्तो मूर्त्तं चा मूर्त्त मेव च।
अमूर्त्तस्याश्रयो मूर्त्तः परमात्मा नराकृतिः ॥

तत्र श्रीमद्भगवद्गीतायाम्—

अ० १०।४१-३९ ॥

यद्यद्विभूति मत्सत्त्वं श्रीमदूर्जित मेव च।
तत्तदेवागच्छत्वं मम तेजोंऽश सम्भवम् ॥४१॥
यच्चापि सर्व भूतानां वीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विनायत्स्यान्मयाभूतं चराचरम् ॥३९॥ ॥१०॥

(११)

जो जेहिं देव उपासक होई।
सो तेहिं को पर मानै सोई ॥

भावार्थ—जो जिस देवता का उपासक होता है, वह उसी को सर्वोपरि मानता है। कारण कि वे देवता उसी एक सर्वेश्वर प्रभु के विभिन्न अंश होने से अपने-अपने भक्तों की इच्छानुसार यथाधिकार कामनाएँ पूर्ति करते हैं। यद्यपि एक (सब से परे) ईश्वर के अतिरिक्त अन्य दूसरा कोई ईश्वर नहीं है, किन्तु उन अज्ञानियों की पूजा अज्ञानपूर्वक होने पर भी उनकी श्रद्धा के अनुसार उनकी कामनाओं की प्राप्ति-कारक होती है और इस प्रकार उन अज्ञानियों की कामनाएँ पूर्ण होने से उस देवता को सबसे परे मान बैठते हैं, किन्तु उनका फल अल्प और अविधिपूर्वक होता है ॥

तत्रप्रमाण—

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्—यथा अ० ७।२०–२३ ।।

कामैस्तैस्तै र्हृत ज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवताः ।
तं तं नियम मास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ।।
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितु मिच्छति ।
तस्यतस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।
सतया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधन मीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हिताम् ।।
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्प मेधसाम् ।
देवान्देव यजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।

ततः पुनः—

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधि पूर्वकम् ।।९।२३।।११।।

(१२)

ये तो निज निज पच्छ सुहाता ।
इसमें एहिं सिद्धान्त की बाता ।।

भावार्थ—नानाभाँति की देवताओं की उपासना-पक्ष की बात यद्यपि अपने-अपने पक्षपात की है किन्तु तो भी अच्छी है, क्योंकि अधिकारी भेद से वेदों, शास्त्रादि व पुराणों द्वारा वह भी सिद्धान्तरूप (प्रमाणित) है ।

तत्र प्रमाणम् यथा—

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्

येऽप्यन्यदेवभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता ।
तेऽपिमामेव कौन्तेय यजन्त्यविधि पूर्वकम् ।।

अ० ९।२३।। पुनः तत्र अ० ७।२३।।

देवान्देव यजोयान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ।।१२।।

(१३)

राम नाम सब नामन हेतू ।
प्रभुहिं मिलावन मोद निकेतू ।।

भावार्थ—श्री राम नाम समस्त भगवत् के नामों का कारण भूत है अर्थात् जितने भगवान् के नाम हैं, सब की व्युत्पत्ति श्री राम नाम से है और श्री प्रभु राम जी से मिलाने वाला तथा परमानंद का स्थान है ।।

तत्र प्रमाणं यथा—

श्रीब्रह्मवाक्यं नारदं प्रति—

विष्णुनारायणादीनि नामानि चामितान्यपि ।
तानिसर्वाणि देवर्षे जातानि राम नामतः ।।

पद्मपुराणे

तथाहि याज्ञवल्क्य स्मृतौ—

परमात्मानमव्यक्तं प्रधानं परमेश्वरम् ।
अनायासेन प्राप्नोति कृते तन्नाम कीर्तने ।।१३।।

(१४)

कलि में हरिकीर्तन अति प्यारो ।
प्रभुहिं मिलावन जन रखवारो ।।

भावार्थ—कलियुग में श्री भगवान् के नाम का कीर्तन अत्यन्त (साधन में सुगम तथा प्राप्ति में सुलभ होने से)

प्रिय है। भगवन्नाम का कीर्त्तन भगवत् की प्राप्ति करा देनेवाला और भक्तों की रक्षा करनेवाला है ।।

प्रमाणम्—

अथर्वणोपनिषदि—

रामनाम जपेनैव देवता दर्शनं करोति कलौ नान्येषाम् ।

आदिपुराणे यथा—

श्रद्धया हेलया नाम वदन्ति मनुजाभुवि ।
तेषां नास्ति पार्थ पथि रामनाम प्रसादतः ।।

पुनः—

सांखल्यस्मृतौ—

श्रवणात्कीर्त्तनाद्यस्य नरो याति निरापदम् ।
तच्छ्रीमद्राम नामाख्यं मंत्रं वै संश्रयाम्यहम् ।।

तथा—

आङ्गिरस्मृतौ—

कान्तार वन दुर्गेषु सर्वापत्सु च संभ्रमे ।
दस्युभिस्संनिरुद्धे च यस्तु श्रीराम कीर्तयेत् ।।

पुनः—

याज्ञवल्क्यस्मृतौ—

ज्ञान विज्ञान सम्पन्नं वैराग्यं विषयेष्वनु ।
अमलां प्रीतिमुन्निद्रां लभते नाम कीर्तनात् ।।

वृहस्पतिस्मृतौ—

यावत् श्रीराम नाम्नस्तु स्मरणं नास्तिभो मुने ।
तावद्यम भटाः सर्वे विचरन्तीह निर्भयाः ।।१४।।

(१५)

सुर - दुर्लभ नर देहीं पाई।
हरि - करुणा को गयो भुलाई ।।

भावार्थ—देवताओं को भी दुर्लभ मनुष्य-शरीर को पाकर यह जीव श्री भगवान् की अहैतुकी दया को भूल गया है। यह मनुष्य-शरीर देवताओं को भी दुर्लभ इस कारण कहा गया है कि अन्य योनियाँ भोग-योनियाँ हैं। उन शरीरों से कोई नवीन कर्म-धर्म, योग, जप, तप, व्रत, ज्ञान, ध्यानादि भक्ति भावना की साधनाएँ नहीं होतीं, जिससे कि जीव अपना श्रेय प्राप्त कर सके। अतः जब जीव को भगवान् महान् कष्ट में देखते हैं, तो उसे संसार के आवागमन के दुस्तर क्लेशों से उद्धार होने के हेतु करुणा करके मनुष्य-शरीर में जन्म देते हैं, जिससे जीव अपने ऊँचे से ऊँचे परम श्रेय श्री भगवत् को प्राप्त कर सके, किन्तु संसार में जन्म लेते ही वह संसार के वातावरण में पड़कर अपना कर्त्तव्य-कर्म करना भूल जाता है और फिर से आवागमन के चक्कर में डालनेवाले कर्म करने लगता है। इसी से कहा गया है कि देव-दुर्ल्लभ मनुष्य-देह को पाकर जीव संसार में आकर श्रीभगवत्कृपा को भूल गया है।

तत्र प्रमाणं यथा—

दुर्ल्लभं मानुषं जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि।
तल्लब्ध्वा पर लोकार्थं यत्नं कूर्याद्विचक्षणः ।।

नारद पुराणे पूर्व० ३७-४७

तत्र पुनः—

प्राप्यापि दुर्लभतरं मानुष्यं विबुधेप्सितम् ।
यैराश्रितो न गोविन्दस्तैरात्मा वञ्चितश्चिरम् ।।

तथा—

विनयपत्रिकायाम्—

गरभ वास दस मास पालि पितु मातु रूप हित कीन्हों ।
जड़हिं विवेक सुशील खलहिं अपराधिहुँ आदर दीन्हों ।।

पुनः—

तोहि दियो ज्ञान-विवेक, जनम अनेक की तब सुधिभई ।
तेहिईशकिहौं शरण, जाकी विषम माया गुनमई ।। . . . . .
पुनि बहुविधि गलानि जिय मानी । अब जग जाइ भजौं चक्रपानी आदि ।।

अर्थात् जीवात्मा की कष्टमय प्रार्थना के अनुसार जब कभी श्री परम प्रभु गर्भवास के दुःख से निवारण करके भगवद्भजन के निमित्त मनुष्ययोनि में जन्म देते हैं, तो जीवात्मा संसार में आकर फिर से अज्ञान के वशीभूत हो जाता है और भगवद्भजन करना भूल जाता है। अस्तु इस विषय में सभी ग्रन्थों में जीव की गति का वर्णन ऊपर लिखे अनुसार किया है।

तथैवहि श्रीरामचरित्रमानसे यथा—

कबहुँक करि करुणा नर देही । देत ईश बिन हेतु सनेही ।।
नर तनु भव वारिधि कहुँ बेरा । सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरा ।।
कर्णधार सद्गुरु दृढ़ नावा । दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ।।

जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाय ।
सो कृत-निंदक मंदमति, आतम हनि गति जाय आदि।।१५।।

(१६)

जो चाहत सो कृति करि पातो।
प्रभु को भजि प्रभु के ढिँग जातो ।।

भावार्थ—एवं इस मनुष्य शरीर को पाकर जीवात्मा जिस-जिस वस्तु की इच्छा करता, वह सुकर्त्तव्य कर प्राप्त कर लेता और श्रीभगवत्स्मरण-भजन करके श्री प्रभु के समीप में पहुँच जाता। भाव यह है कि जीवात्मा को इतनी सामर्थ्य है (ईश्वर का अंश होने से) कि वह यदि चाहे तो भगवत् की शरण में रहकर भगवत्-प्राप्ति अनुकूल-साधना करके श्रीभगवान् की सामीप्यता को प्राप्त कर सकता है ।।

तत्रा प्रमाणं यथा—

विष्णु पुराणे अ० ३।८।७

राजा सगर प्रति और्वमुनिकृत वाक्यं—

यद्यदिच्छति यावच्च फल माराधितेऽच्युते।
तत्तदाप्नोति राजेन्द्र भूरि स्वल्प मथापि वा ।।

अर्थात्—

हेराजेन्द्र! जीव जिस-जिस फल की जितनी-जितनी इच्छा करता है, अल्प हो या अधिक श्री अच्युतभगवान् की आराधना से निश्चय से सब प्राप्त कर लेता है ।।

तथाहि श्री मद्भगवद्गीतायाम्—

समोऽहं सर्व भूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुन प्रति कहते हैं—

हे अर्जुन ! यद्यपि मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा प्रिय है न अप्रिय, परंतु जो मेरे को प्रेमसे भजते हैं, वे मेरे और मैं भी उनमें उन की भावना के अनुसार प्रत्यक्ष प्रगट हूँ ।।१६।।

(१७)

प्रभु के हो न और के होवो ।
बनी बनाई बात न खोवो ।।

भावार्थ—(जीवात्मा के प्रति कि) हे जीव ! ईश्वर के होकर (अंशांशी न्याय से) तुम दूसरे (अन्यदेवताओं) के न होओ और बनी बनाई बात न खोओ, भाव यह कि यह जीव ईश्वर का सनातन अंश है और सब भाँति से श्री परमप्रभु श्री रामजी की सेवा धर्म में निपुण है। अपने सेवा धर्म से विमुख होना तथा दूसरे देवताओं के आश्रय में जाना ही अज्ञानता है। पूर्व में की हुई इसी अज्ञानता एवं इन्द्रियों के सुखों में पड़कर यह जीव ८४ लाख भोग्य-योनियों में पड़कर नाना प्रकार की यातनाएँ भोगता रहा। इस असह्य दुःख से निवारणकर श्रीप्रभु ने इसके उद्धार के लिये देवताओं को दुर्लभ मनुष्य शरीर दिया है। अब इस मनुष्य-देह को पाकर श्रीभगवान् को भूलकर फिर से पूर्व की भाँति बनी बनाई बात खो देना है।

तत्र प्रमाणं शिवसंहितायाम्

मधुरे भोजने पुंसो विषवद्भोजने मलम् ।
मलंस्यादन्य देवानां सेवनं फलवाञ्छया ।।
तस्मादनन्यसेवी सन् सर्व काम पराङ्मुखः ।
जितेन्द्रिय मनः कोपो रामं ध्यायेदनन्यधीः ।।

तथा--

हरीतस्मृतौ--

दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम् ।
दास्येनैवभवेन्मुक्तिरन्यथा निरयं व्रजेत् ।।१७।।

(१८)

हरि बिन ठाट बृथा सब जानो ।
प्रभु सह सब प्रभु सेवा मानो ।।

भावार्थ--संसार का वैभव यदि भगवत्सम्बन्ध युक्त नहीं है, तो सब व्यर्थ है व यदि उसके प्रयोग में श्रीभगवत्-सेवा का निमित्त लगा हुआ है, तो उसे ही यथार्थ भगवत्सेवा जानना चाहिए ।

तत्र प्रमाणं शिववाक्यं शिवां प्रति--

श्रीमन्महारामायणे--

किं वर्णयामि विमले बहुभिः प्रकारैः-
सीतापतेर्विगत ज्ञान विशेष सर्वम् ।
ज्ञानं तदेव कुसुमं च यथा न भोजं-
सत्यं वदामि च तदा न सुखं च स्वप्ने ।।

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
अयोध्या
श्री रामराम दास बावनी से

तथा हि—
स्कन्दमहापुराणे—

विष्णुभक्ति विहीनानां श्रौतस्मार्तक्रियाः क्रियाः।
कायक्लेश फलं तासां स्वैरिणी व्यभिचारवत ।।

तथा—
श्रीरामचरित मानसे—

तुम्ह विन राम सकल सुख साजा।
नरक सरिस दुहुँ राज समाजा ।।
सो सुख करमधरम जरि जाऊँ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ ।।

जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम पर धानू ।।

पुनः—

राम विमुख सम्पति प्रभु ताई।
जाय रही पाई विन पाई ।।

तथा—
दोहा—दान, दया, दम, तीर्थ, व्रत, संयम नेम अचार।
मन वच कायिक कर्म सह, आत्म राम पद वार ।।१८।।

(१९)

हरि-पद-रति सत-योग बनावन।
मोद ठाम बासना मिटावन ।।

भावार्थ—श्री हरि के चरणों में प्रीति होना श्री प्रभु प्राप्ति का सच्चा मार्ग है। इस से संसार की वासनाओं का नाश होकर भगवत्प्राप्ति का आनन्द प्राप्त होता है।

यथा रामचरितमानसे--

स्वारथ साँच जीव कहँ एहा।
मन, क्रम, वचन, राम-पद नेहा॥

विनयपत्रिकायाम्--

प्रीति-प्रतीति राम-पद-पंकज सकल सुमंगल खानी।

पुनः--

जो विन योग, यज्ञ, व्रत, संजम गयो चहै भव पारहि।
तो जनि तुलसीदास निशि वासर हरि-पद-कमल विसारहि।१९॥

(२०)

हरि-गुरु-संत-कृपा बिन भाई।
मन थिर होय न सत-सुखपाई॥

भावार्थ--विना श्री हरि, श्री गुरु व श्रीभगवद्भक्तों की कृपा के हे भाइयो! न तो मन स्थिर होता है और न जीव को भगवत्प्राप्ति का सच्चा-सुख मिल सकता है।

तत्र प्रमाणं विनयपत्रिकायाम्--

यथा--

द्विज-देव, श्रीगुरु, हरि, संत बिन संसार पार न पाइये।

तत्रै हि--

तुलसिदासहरि गुरु करुणा बिन विमल विवेक न होई।
बिनविवेक संसार घोर-निधि पार न पावै कोई॥

तथा हि--

भव सागर को तरन नाव शुद्ध सन्तन के चरण॥२०॥

(२१)

गुप्त-पाप सब अघ के मूला।
हरन सुभाग्य देन बहु शूला।।

भावार्थ—गुप्त-पाप समस्त पापों का कारण है। वैसे तो प्रगट व अप्रकट सब प्रकार के पाप पापों के ही कारण बनते हैं। और सब प्रकार के पाप सु-निश्चित-परिणाम-दायक-प्रारब्ध को नष्ट करके नाना भाँति की व्याधियों को देने वाले होते हैं। किन्तु इस (गुप्त-पाप) का विशेष पापमयी होने का कारण यह है कि गुप्त पाप-कर्मों का प्रकट न होने से प्रायः कोई प्रायश्चित नहीं होता और प्रायश्चित के न होने से उत्तरोत्तर वह बढ़ते जाते हैं, जिससे बहुत से अनर्थ उत्पन्न होते हैं जो अत्यन्त कष्ट देनेवाले होते हैं।।२१।।

(२२)

गुप्त भजन सब सुख को हेतू।
भाग्य-बढ़ावन करन सचेतू।।

भावार्थ—गुप्त-भगवद्भजन सब-भाँति के सुखों के उत्पन्न होने का कारण है। यह भाग्य (पुण्यमयी-प्रारब्ध-कर्मों) की वृद्धि करनेवाला और चैतन्यता (ज्ञान-विज्ञान) को जागृत करनेवाला है। गुप्त-भजन इस कारण से श्रेष्ठ कहा गया है कि कलिका प्रभाव

होने से वह अपने राज्यकाल में शुभकर्म नहीं होने देता। इससे गुप्त करना ही श्रेयस्कर है। पुण्य-कर्म प्रकट में करने से बहुत से लौकिक विघ्न भी सामने आते हैं ।।२२।।

(२३)

धरि विवेक बंधन ते छूटे।
करि हरि-भक्ति राम-रस लूटे ।।

भावार्थ—श्रीभगवद्भक्तों तथा श्री गुरु द्वारा निर्मल-ज्ञान करके माया जनित संसार के बन्धन से निवृत हो जाओ और श्रीभगवद्भक्ति का आचरण करके परमानन्दमयी श्री रघुनाथजी की भक्ति का अनेकों भाव करके मन माना ब्रह्मानन्द का अनुभव प्राप्त करो।

यथा—अर्द्धपाद श्लोक—

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्द सान्द्रा-
विलुठति चरणाग्रे मोक्ष-साम्राज्य-लक्ष्मीः ।।

अर्थात्—यदि श्री हरि में परमानन्द-स्वरूपा भक्ति का उदय हो जाय, तो उसके चरणों के सामने मोक्ष साम्राज्य-श्री लोटती-फिरती है ।।२३।।

(२४)

हरि गुरु संत सहायक साँचे।
धनि बड़ भाग जो इन में राँचे ।।

भावार्थ—जीव को सद्मार्ग में प्रवृत्त करानेवाले सच्चे साथी अर्थात् लौकिक व पारलौकिक मार्ग का यथार्थज्ञान प्राप्त करा देनेवाले इस संसार में श्री हरि, श्रीगुरु एवं श्रीभगवद्भक्त हैं। उन मनुष्यों के भाग्य सराहनीय हैं कि जिनकी प्रीति इनके प्रति तन, मन, वचन से है।

तत्र प्रमाणं यथा—

नारदभक्ति सू० ४१—४२।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्। तदेव साध्यताम्, तदेव साध्यताम्॥

तत्रैव यथा—

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तैर्भगवानेव भजनीयः॥

ना० भ० सू० ७९ ॥२४॥

(२५)

बिन हरि गुरु, संतन के संगा।
कबहुँ न हो दुख दारिद्र भंगा॥

भावार्थ—विना श्री हरि, श्री गुरु और सन्तों की संगति के संसार के आवागमन की दुख-रूपी दरिद्रता का नाश कभी नहीं हो सकता।

यथा—

हरि स्मृतिः सर्व विपद्विमोक्षणे।

तथा श्रीरामचरित मानसे—

रामभगति-मणि उर बस जाके।
दुखलवलेश न स्वपनेहु ताके॥

तथा च——

मोह दरिद्र निकट नहिं आवा।
कामवात नहिं ताहि बुझावा'।।

तथा च——

गुरु विन भव निधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई।।

अध्यात्मे श्रीपरशुरामवाक्यं श्री रामं प्रति यथा——

यावत्त्वद्पाद भक्तानां संग सौख्यं न विन्दति।
तावत्संसार दुःखौघान्न निवर्त्ते न्नरः सदा।।

तथा च——

ये भजन्ति स्पृहा शून्या हरि भक्तान् हरिं तथा।
त एव भुवनं सर्वं पुनन्ति स्वांङ्घ्रि पाँशुना।।

ना० पूर्व० ३८।६४।

तथा च——

श्रीमद्भवद्गीतायाम्—श्रीभगवद्वचन——यथा अ० ८।१५।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालय म शाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानः सांसिद्धिं परमां गताः।।

अर्थात्——मेरे को प्राप्तहोकर, परमसिद्धि को प्राप्त हुए महात्मा जन दुःख के स्थान रूप क्षणभंगुर-पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं।।२५।।

(२६)

मूर्ति सुविग्रह में नित लगनो।
परतछ प्राप्ती जान सु-जगनो।।

भावार्थ—सुन्दर श्री विग्रह की सेवा-पूजा-ध्यानादि में सदैव लगे रहना श्री भगवान् की प्रत्यक्ष प्राप्ति जानना चाहिए, अतः चैतन्यतापूर्वक सुन्दर भाव धारण करके नित्य समयानुकूल प्रेम से सेवा करना सब मुमुक्षुओं का धर्म है। वैसे तो जीव के उद्धार के निमित्त ५ प्रकार की प्रतिमाओं का पूजन शास्त्रों में कहा गया है, जो अर्चा-रूप से संसार में पूजी जाती हैं। इनको प्रत्यक्ष भगवत्स्वरूप मानकर सब को पूजन करना चाहिए। यथा—

१. स्वयंव्यक्त-यथा—श्रीरङ्गपद्मनाभ, व्यंकटाद्रि, विन्दुमाधव।
२. देवताओं द्वारा प्रतिष्ठित—यथा श्री जगन्नाथ जी।
३. सिद्धों द्वारा स्थापित—यथा-श्रीपन्हरीनाथजी।
४. मनुष्यों द्वारा स्थापित—जो ग्रामों में हरि मंदिर बनवाकर पधारे जाते हैं।
५. स्वयं प्रतिष्ठित—यथा-श्रीशालिग्रामशिला।

लोक रक्षा के हेतु अर्चावतार सब से सुलभ सेवा का उपाय बताया है। सर्वत्र सब सुलभ-प्राप्ति न समझकर यहाँ पर इस उपदेश में दो प्रकार के श्रीभगवद्विग्रहों की सेवा का संकेत किया गया है। एक सुन्दर चिह्नों-युक्त श्रीशालिग्रामशिला का तथा दूसरी सुन्दर स्वरूपवान् अपनी भावना के अनुसार मूर्ति बनाकर विधिवत् प्राण प्रतिष्ठा कराके सेवा-पूजा करना। अतएव अपनी योग्यता के अनुसार इनमें से किसी एक में चैतन्यता पूर्वक लग जाना उत्तम है ॥२६॥

(२७)

जो माया से छूटन चाहो।
तो हरि-जन-पद-रति निर्वाहो ।।

भावार्थ--(जीवात्मा प्रति) यदि तुम माया (सांसारिक बन्धन) से बचना चाहते हो, तो श्रीभगवद्भक्तों के चरणों में सदैव प्रेम बनाये रक्खो। किसी समय भी प्रेम में न्यूनता न आने पावे। यथा--

यथा--श्रीमद्भागवते--११।२६।३१

यथोपश्रय माणस्य भगवन्तं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवनस्तथा ।।

अर्थात्--जैसे अग्निदेव के सहारा लेनेवाले पुरुष के शीत, भय और अंधकार दूर हो जाते हैं, उसी प्रकार साधुओं के सेवन से पापरूपी शीत, जन्ममरण रूपीत्रय और अज्ञानरूपी अन्धकार मिट जाते हैं। ।।२७।।

(२८)

और उपाय न दूसर कोई।
पूर्वा चार्य कहत सब कोई ।।

भावार्थ--संसार से उद्धार होने का सिवाय श्रीभगवद्भक्तों की संगति के कोई दूसरा उपाय नहीं है। पूर्व में आचार्य लोग हो गये हैं, वे भी सब ऐसा कहते हैं।

श्रीरामचरितमानसे--

मति, कीरति, गति, भूति, भलाई।
जब जेहि जतन जहाँ जो पाई ।।

सो जानव सत्संग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ।।

तथाहि—

बाल्मीकि, नारद, घटजोनी।
निज-निज मुखनि कही निज होनी।।२८।।

(२९)

जेहि बिधि हृदय भाव रह जाको।
तेहि बिधि प्रगट वस्तु है ताको।।

भावार्थ—जिसके हृदय में जिस प्रकार का भाव होता है, उसी प्रकार उसे वस्तु की प्राप्ति होती है।

यथा—

प्रतिमा मंत्र तीर्थेषु ब्राह्मणे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।

तथा—श्रुति

यथोपास्ते तथा तथा तद्भवति।

पुनः प्रमाणं—

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान्स्तथैव भजाम्यहम्।।२९।।

(३०)

संत वेष लखि हरि सम जानो।
बिनय भाव-युत नत-शिर मानो।।

भावार्थ——भगवद्भक्तों का भेष देखकर उनको श्रीभगवान् के समान मानो तथा विनय भावपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रेम से आदर-सत्कार करो। तात्पर्य यह कि संतों की मन, वचन, कर्म से निष्कपट सेवा करो, प्रेमभाव में न्यूनता कभी न हो।

यथा विनयपत्रिकायाम्

संतभगवंतअंतर निरंतर नहीं किमपि मति मलिन कह दासतुलसी।।
भक्ति, भक्त, भगवन्त, गुरु, चतुरनाम वपु एक।

श्रीभक्तमाले——

इनके पद वन्दन किये, नाशत विघ्न अनेक ।।३०।।

(३१)

पंच विषम हरि में दृढ़ कीजै।
निज अभिलाष सु सब भरि लीजै ।।

भावार्थ——पञ्चविषय-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनके अधिष्ठान पाँचों ज्ञान-इन्द्रियों (क्रमसे यथा कान, त्वचा, आँख, जीभ, नासिका) से संसार के व्यवहार में प्रयोजन मात्र निष्काम भाव से तथा श्री भगवान् के भजन, सेवा में निश्छल भाव से दृढ़ता पूर्वक इन ज्ञानेन्द्रियों तथा इनके आश्रित रहनेवाली कर्म-इन्द्रियों से लगना उचित है। कारण कि भगवत्सम्बन्ध स्थापित हो जाने से समस्त कर्मों का फल सब भाँति की अभिलाषाओं की पूर्ति कर देने वाला

है। अर्थात् जब सब भाव से श्रीभगवान् को आत्म-समर्पण जीव का हो जाता है, तो उसकी मनोकामनाएँ स्वयं भगवान् पूरी करते हैं।

यथा— श्रीमुखवाक्यं—

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्—अ० ९।२२ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्यु पासते।
तेषां नित्याभि युक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम् ॥

तथा पंचविषयों का भगवत्सेवामें आरोपण।

यथा—शब्द कानों से नाम, गुण, चरित्रों का विशेष श्रवण।

स्पर्श—शरीर से चरण कमलों की सेवा में विशेषरूप से लगना।

रूप—नेत्रों से दर्शन, चितवन विशेष रूप से होना।

रस—जिह्वा से प्रेमपूर्वक भगवत्प्रसादी का सेवन करना।

गन्ध—नासिका से भगवत्प्रसादी पुष्प, हार, इत्रादि सुगन्धित द्रव्यों का सेवन करना ॥३१॥

(३२)

मन थिर करि जेहिं गुरु कर दीन्हौ।
तेहिं पुनि सकल बिभव बस कीन्हौ ॥

भावार्थ—जिसने पाँचों इन्द्रियों तथा उनके विषयों सहित मन को शान्त करके श्री गुरु महाराज की सेवा में लगा दिया है अथवा श्रीगुरुजी ने स्वस्थ चित्त होकर जिस पर अपना कृपामयी हस्त कमल स्पर्श कर दिया है, तो जानना चाहिये कि उसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त हो गया,

अर्थात् जिस पर श्री गुरुदेव की कृपा हो जाती है, उसको लोक परलोक दोनों का सुख प्राप्त हो जाता है।

यथा मानसे--

जे गुरु-पद-अंबुज अनुरागी।
ते लोकहु वेदहु बड़ भागी।।
जे गुरु चरणरेणु शिर धरहीं।
ते जनु सकल विभव वश करहीं।।३२।।

(३३)

बिन सन्तोष न सत-सुख पावै।
अधर चाटि कोउ तृप्ति न लावै।।

भावार्थ--विना सन्तोष के कोई सच्चा-सुख (आत्मानन्द, ब्रह्मानन्द, परमानन्द) नहीं पाता। जैसे क्षुधा-पीड़ित अथवा प्यास से तृषित मनुष्य केवल ओंठों के चाटने से अपनी तृप्ति नहीं कर सकता। भाव यह है कि जबतक वासनाओं के त्याग एवं परम संतोषरूपी खजाना न होगा, तबतक जीव को यथार्थ सुख की प्राप्ति नहीं होती।

यथा श्री रामचरितमानसे--

विन संतोष न काम नशाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।।३३।।

(३४)

विषय असार सुमन कर भर्मा।
परमानंद बिन मिलै न मर्मा।।

भावार्थ—विषयों का सेवन क्षणभंगुर सार रहित केवल मन आदि इन्द्रियों को भ्रम में डालनेवाला सुख है। विषयों के सुख जीव को दुःख के देनेवाले और संसार में आवागमन के कारण रूप बनते हैं। जबतक सत्संग द्वारा वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं होती, तबतक इन विषय-जन्य-क्षण भंगुर सुखों का रहस्य नहीं जान पड़ता। यह परमानन्दमयी दिव्य आनन्द केवल श्री हरि, श्री सत्गुरु एवं श्री सन्त-महानुभावों की कृपा से मिलता है। जिस समय उनका सतसंग प्राप्त हो जायगा उसी समय से अनायास विषयों का अभाव हो जायगा और निश्चल- एकरस श्री भगवान् के प्रति प्रगाढ़ प्रेम बढ़ जायगा।

यथा—

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्—अ० ५।२२—श्रीमुखवाक्यं श्रीअर्जुनं प्रति

ये हि संस्पर्शजाभोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

अर्थात्—जो यह इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं वे सब यद्यपि विषयी पुरुषों को सुख रूप भासते हैं तो भी निस्सदेह दुःखो के हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं, इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान्, विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता॥३४॥

(३५)

नाम, रूप, लीला, चित धारो।
धाम, बास पर सर्वस वारो॥

भावार्थ—जीव के उद्धार के लिए आचार्यों ने श्री भगवत्प्राप्ति के निमित्त मुख्य उपाय भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम की सेवा करने को बतलाये हैं। अतएव यहाँ पर उन्हीं का संकेत सूक्ष्म रीति से किया जाता है। यथा—श्रीभगवान के नाम रूप, लीला तथा चौथा उपाय धाम में वास करना है। इन्हीं का नित्य चिन्तन करना चाहिए और तन, मन, धन द्वारा चतुष्टयान्तः करण से सेवन करते हुए परात्पर प्रभु श्रीरामजी पर निष्कपट होकर निछावर हो जाओ। सेवा का क्रम यह है।

यथा—

१ मन से—'श्री राम नाम' जपो। यही **नाम सेवा** है।

२ बुद्धि से—नख से शिख तक श्रीराम 'रूप' का चिंतन। यह **रूप सेवा** है।

३ चित्त से—परात्पर प्रभु श्रीरामजी के दिव्य गुण वात्सल्यता, दयालुता, आदि मयी 'लीला' व चरित्रों का नित्य चिन्तन। यह लीला सेवा जानो।

४ अहंकार—शरीर से धाम वास करके उसके माहात्म्य के सामने अन्यत्र-निवास की चेष्टा कोई भी सुखदायक नहीं है—ऐसा अभिमान रखना। अतः यही चौथी व सबसे श्रेष्ठ व सरल **सेवाधाम-वास** की है।

उक्त नाम, रूप, लीला, धाम चारों सर्वोपरि हैं, किंतु सहज (साधन करने में) **धाम-वास** है। अस्तु, इसी से यहाँ पर धाम-वास पर सर्वस्व निछावर करने को कहा है ॥३५॥

(३६)

मन की कही न कछु हिय धरिये।
मन आई प्रभु - पद- रति करिये ।।

भावार्थ—मन का कहना कभी किञ्चिन्मात्र भी हृदय में धारण न करना चाहिए, किन्तु श्रीभगवान् के चरण कमलों में प्रेम मन के नाना प्रकार के भावों के द्वारा करना चाहिए। भाव यह कि निज-सुख हेतु कोई कर्म न करे, जो कुछ करे श्रीभगवत् अर्थ निष्काम-भाव से विधि-पूर्वक भाँति-भाँति के भावों से करे। मन का भोग किन-किन द्वारों से होता है।

इसका प्रमाण श्रीमद्भगवद्गीतायाम्

यथा—

श्रोत्रं चक्षः स्पर्शनं च रसनं घ्राण मेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।

अ० ६५।९।।

तथा—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।
बन्धाय विषया सक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ।।३६।।

(३७)

प्रभु-स्वरूप गुण-गण कौ ज्ञाना।
आतम अमल करन अस्नाना ।।

भावार्थ—श्रीभगवान् के स्वरूप का ध्यान तथा उनके गुणों के प्रभाव को हृदयङ्गम करना आत्मा (जो कि संसार के

संसर्ग से मलिन हो जाती है) को शुद्ध करने वाले स्नान के समान है। अर्थात् भगवान् के सुन्दर स्वरूप तथा अनन्त प्रभाव व वात्सल्यादि शुभगुणों के जान लेने से जीवात्मा को अपने निर्मल, शुद्ध, चेतन स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

यथा---श्रीरामचरितमानसे

रघुवंश-भूषण-चरित यह नर कहहिं सुनहिं जो गावहीं।
कलिमल-मनो-मल धोय बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ॥३७॥

(३८)

तत्-सुख-रूप सुनिज-सुखरूपा।
जग प्रभु-चिंतन परम अनूपा॥

भावार्थ---अपने परम प्रिय श्री प्रभु को माधुर्य भाव से सेवा करके सुख पहुँचाना अथवा अपने प्रेमास्पद श्री युगल प्रभु के सुख को देखकर स्वयं सुखी होना ही तत्सुख है। इसी निज-सुख-स्वरूप को जीवात्मा का यथार्थ रूप कहा गया है। अतः सदैव सावधान होकर श्रीभगवान् का स्मरण करना परम उत्तम कार्य है। अथवा संसार में सर्वत्र अपने परम प्यारे श्री युगल प्रभु की लीला नानाभाँति के रूपों में देखकर और अपने को उनका दिव्यांश भोग्य एवं दास समझ कर नित्य सेवाभावसंलग्न करके अनुपम सुख प्राप्त करना परमोत्तम कार्य है ॥३८॥

(३९)

सतगुरु-सिख रति परम ठिकाना।
या बिन कोउ कछु हाथ न आना॥

भावार्थ—श्री सतगुरु का उपदेश श्रीभगवद्भक्ति प्राप्ति का सबसे श्रेष्ठ आश्रय है, अथवा श्रीसद्गुरु के उपदेश के प्रति परम श्रद्धा व प्रेम होना बड़े सौभाग्य की बात है। संसार में सिवाय इसके कोई ऐसा साधन नहीं है, जिससे भगवत्प्राप्ति का सुख अथवा भगवत्प्राप्ति हो सके।

श्री रामचरितमानसे यथा—

गुरु बिन होय कि ज्ञान...
महामोहतम पुंज, जासुवचन रविकर निकर।
गुरु बिन भवनिधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई॥ आदि ३९॥

(४०)

भल संगति निसि-वासर करिये।
दुष्ट-संग नहिं करि परिहरिये॥

भावार्थ—जीव को अपने उद्धार के लिए दिन-रात सत्पुरुषों की संगति करना योग्य है और दुष्ट मनुष्यों का सङ्ग कदापि न करना चाहिए। यदि कहीं अकस्मात् संग हो जाय, तो शीघ्र उसे परित्याग कर देना चाहिए।

यथा—रामचरितमानसे—

हानि कुसङ्ग सुसङ्ग तिलाहू। लोकहु वेद विदित सब काहू॥

तथा--

को न कुसंगति पाय नशाई। रहै न नीच मते चतुराई ।।

पुनः--

संत सङ्ग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुराण सद्ग्रंथ ।।४०।।

(४१)

सत - सूधौ - सुभाव रख भाई।
छल मय वचन न कहै बनाई ।।

भावार्थ--हे भाई! सच्चा तथा सीधा स्वभाव रक्खो, कभी भी कपटपूर्वक बना के बात न कहो। श्रीरामचरित-मानस में इसकी गणना नवधाभक्ति में की गई है।

यथा--

नवम सरल सब सन छल हीना।
ममभरोस हिय हर्ष न दीना ।।

तथा दोहा वल्याम्

यथा--

सूधो मन सूधी भगति, सूधी सब कर तूति।
तुलसी रघुवर सेवकहिं, सकै न कलियुग धूति।
तुलसी सूधी सकलविधि, रघुवर प्रेम प्रसूति ।।४१।।

(४२)

प्रभु को जन प्राणन से प्यारो।
निर्छल जन को प्रभु रखवारो ।।

भावार्थ——श्रीभगवान् को अपना भक्त प्राणो से अधिक प्यारा है और निष्कपटभक्तकीरक्षा स्वयंभगवान् करतेहैं।

यथा दोहावल्याम्——

जासु भरोसे सोइये, धरें गोद में शीश।
तुलसी तासु कुचालिते रखवारो जगदीश॥

तथा श्रीमानसे——

निर्मल मन जन मोहिं सो पावा।
मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा।
राम ते अधिक राम कर दासा॥४२॥

(४३)

श्री हरि सुमिरन करते रहिये।
विन प्रभु सुमिरन चैन न लहिये॥

भावार्थ——श्री भगवत्स्मरण निरन्तर करना चाहिए। बिना श्रीभगवत्स्मरण के विश्राम लेना न चाहिए।

तत्र प्रमाणंश्री नारदभक्ति सूत्रे ७९।

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तैर्भगवानेव भजनीयः।

तदर्प्पिताऽखिला चारता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति अस्त्येव मेवम्॥

तथा श्रीमानसे——

एहि कलिकालन साधन दूजा।
जोग जग्य जप तप व्रत पूजा।
रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं।
सन्तत सुनिय राम गुण-ग्रामहिं॥४३॥

(४४)

जो चाहिये सब विधि कुशल, हरि भजनको नहिं छोड़िये।
मन बचन कर्म लगाय सब दिन, सुरत प्रभु में जोड़िये ।।
छिनभंग फोटक भरम मय, जगकी प्रतीति न कीजिये ।
परम आँनद सुख लहहु नर बर जनम फल लीजिये ।।

भावार्थ—जो सब प्रकार से अपनी कुशलता चाहते हो, तो श्री भगवत्स्मरण को न छोड़ना चाहिए। मन, वाणी और शरीर सब से (दिनरात्रि को) सदैव अपनी सुरति श्री परम-प्रभु श्रीरामजी में लगाए रक्खो। इस क्षणभंगुर सारहीन, भ्रममूलक संसार को चिरस्थायी रहने का विश्वास न करो, प्रत्युत श्री प्रभु-प्राप्ति का परमानन्दमयी सेवानुरूप चिरस्थायी सुख को प्राप्त करके मनुष्य-शरीर धारण करने का सार्थक-फल ले लो। प्रमाणं श्रीमद्भागवते ११।।

यथा—

तस्माद् देह मिमं लब्ध्वा ज्ञान विज्ञान सम्भवम् ।
गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः ।।
किं दुरापदनं तेषां पुंसामुद्दाम चेतसाम् ।
यैराश्रितस्तीर्थ पद श्चरणो व्यसनात्ययः ।।

तथा भारते—

या वै साधन सम्पत्तिः पुरुषार्थ चतुष्टयम् ।
तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः ।। ४४।।

(४५)

जो सुनि गुनि समझौ सबहिं, धारण करै न बात।
निश्चय तेहिं शिर जानिये, अति अभाग्य सरसात ।।

भावार्थ—जो मनुष्य सदुपदेशों को सुनता, गुनता और सब समझता भी है, किन्तु यथार्थ सिद्धांत के अनुसार उपदेश को धारण नहीं करता, अर्थात् उसे करता नहीं है, तो जानना चाहिए कि निस्सन्देह उसके शिरपर भारी अभाग का लक्षण प्रकट हो रहा है और उसका भविष्य (श्री भगवद्विमुखकर्म होने से) बहुत दुःखमय बीतेगा।

यथा श्रीपाद्मे—

येषां न मानसं राम लग्नं नेह मनोरमे।
षञ्चिता विधिना पाप-स्तेवै क्रूरतरा मताः ।।४५।।

(४६)

जो श्री हरि जन संतन बानी।
सुनि गुनि धरि हिय निज हित जानी ।।

भावार्थ—जो मनुष्य श्रीभगवद्वाक्य (वेद, शास्त्र, पुराणादिकों में वर्णित) श्री भगवद्भक्त, सन्तो की वाणियों को श्रवण व मनन करके तथा अपनी हितकारक जानकर हृदय में धारण करता है, उसका भविष्य परम सौभाग्य—कारक कल्याणमयी जानना चाहिए। अथवा श्री हरि, श्रीभगवद्भक्त व सन्तों के वचनों को

अपना परम हितमयी जानकर प्रेम से सुनना, विचारना तथा हृदय में धारण करना चाहिए ।।४६।।

(४७)

मन प्रसन्न करि जो भल दाना ।
सो मन शुद्ध करन कल्याना ।।

भावार्थ--मन से प्रसन्नतापूर्वक जो दिया जाता है, वही उत्तम दान है। उसी से मन की शुद्धि और जीवात्मा को कल्याणकारक होता है। किन्तु यह दान शास्त्र की विधि के अनुसार देने से ही कल्याणकारक हो सकता है।

यथा श्रीरामचरितमानसे--**सोधनधन्यप्रथम गति जाकी...।**

तथा--

श्रीमद्भगवद्गीतायाम्--श्रीमुखवाक्यम् ।

यथा--

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ।।४७।।

(४८)

पाप करम कौ फल दुख कूपा ।
पुन्य कर्म को फल सुख रूपा ।।

भावार्थ--पापममी कर्मों का परिणाम दुःखदायक होता है और पुण्यमयी कर्मों का फल सुख का देनेवाला होता है।

कर्म ३, प्रकार के कहे गये हैं—सात्विक, राजसी व तामसी। सात्विक का फल सुख, ज्ञान और वैराग्य है ; राजस का फल दुःख और तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है। सत्वगुण में स्थित हुए पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं, रजोगुण में स्थिर मध्य में अर्थात् मनुष्यलोक में रहते हैं और तमोगुण के कार्य रूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि में स्थित हुए तामस पुरुष अधोगति अर्थात् कीट, पतंग, पशु आदि नीच योनियों को प्राप्त होते हैं ।।४८।।

(४९)

पूर्व पाप से ही पापहिं रति।
पुन्य से पुनि प्रभु कृपा प्रभू गति ।।

भावार्थ—पूर्व जन्म में किए हुए पापकर्मों के संस्कारों के कारण मनुष्य की रुचि स्वाभाविक पापों के करने की ओर झुकती है तथा उनमें प्रेम भी होता है। और पुण्यकर्मों के संस्कार से पुण्यकर्मों के करने में प्रेम होता है तथा अधिक पुण्यों के प्रभाव से श्रीभगवत्कृपा होती है। श्री प्रभु की जब कृपा होती है तभी श्रीप्रभु की शरणागति प्राप्त होती है। श्रीप्रभु की शरणागति जब जीव को प्राप्त हो जाती है, तो वह सर्वदा के लिए निर्भय, अखण्ड सुखयुक्त एवं आवागमन के दुःख से छूट जाता है ।।४९।।

(५०)

प्रभु की त्रास आस बल भारी।
हरि बिन नहिं कोउ निज हितकारी ।।

भावार्थ—जीव को सब-काल श्रीभगवान् की सर्वव्यापकता सर्वान्तर्यामीपन, सर्वसाक्षीपन, सर्व दृष्टामयी एवं सर्वत्र विद्यमानता समझकर सदैव पापकर्मों से डरते हुए शास्त्र सम्मत कर्म करना चाहिए और शरणागति का आश्रय पाकर उनके द्वारा रक्षित रहने का बड़ा-भारी बल रखना चाहिए। साथ ही साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सिवाय श्रीहरि के जीव का कोई सच्चा हितैषी नहीं है ।।५०।।

(५१)

बिन प्रभु छिन जीवित नहिं रहिये।
हरि कै ह्वै हरि-की-रति गहिये ।।

भावार्थ—हे जीवात्मन्! बिना श्रीभगवत्स्मरण के क्षण भर भी जीना उचित नहीं है, अर्थात् बिना श्रीभगवत्स्मरण के जीवन का समय मृतक समान है—उस समय को व्यर्थ व्यतीत हुआ जानना चाहिए, उसकी गणना जीवन-काल में नहीं मानना चाहिए, अतएव निरंतर श्रीहरि की शरणागति प्राप्तकर श्रीभगवद्भक्ति को प्राप्त कर दढ़ता-पूर्वक धारण किये रहना चाहिए।

यथा—श्रीरामचरितमानसे—

जे क्षण गये तुम्हिं बिन देखे । ते विरंचिजनि पारहिं लेखे ।।

तथा—

अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः ।।५१।।

श्रीमद्भगवद्गीता अ० ८।१४

(५२)

जाके कोउ न ताहि हरि, हित या हर्ष समेत ।
बिन चाहे पूरी करैं, चाहैं मोद निकेत ।।

भावार्थ—हे जीवात्माओ ! संसार में जिसका कोई नहीं है, उसके सहर्ष हितकारी साक्षात् श्रीभगवान् हैं, जो अपने भक्तों की अभिलाषाएँ बिना कुछ माँगने से ही पूर्ण करते हैं और परम-सुख की इच्छा करने वालों के हृदय-देश में विराज कर स्वयं आनन्द के स्वरूप बन जाते हैं अर्थात् भक्त के हृदय में तथा उसकी दृष्टि में सर्वत्र परमानन्द स्वरूप श्री हरि ही दिखाई देते हैं ।

यथा—

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ।
तथापि तत्परा राजन नहि वांछन्ति किंचन ।।५२।।

15293
अयोध्या

छंद

परमोद वन परमोद लावन परम पावन भाँवनो ।
युगल मन भाँवन सुहाँवन सखिन सुख सरसाँवनो ।।
रस रहस मीत सुलाँवनो रति रीत बहु दरसाँवनो ।
उपलब्ध लब्ध अलभ्य मुद शुभ दिव्य गति बरताँवनो ।।
बहुवाद्य नृत्य सुगीत गावन नितहि मोद मन्याँवनो ।
ब्रह्मादि सुख दुर्लभ स्वसुख सखि पद नखन ठुकराँवनो ।।
युगल घन आनन्द निधि उज्वल सुरस बरषाँवनो ।
अति परम आनँद केकि नृत्यति मोर तोर मिटाँवनो ।।
दम्पति युगल पद नन्य गति गह लवन पास बिहाँवनो ।
नत कृपाशीला शुभ सुशीला गुरुहि नित्य मनाँवनो ।।
बहुरूप धरि मुग्धादि भेद सुहर्ष प्रिय हरषाँवनो ।
आठौ पहर प्रिय पाँवनो निज अघन यौ बिसराँवनो ।।
मुद, प्रेम, शीला रहै मुद में प्रीय मन मनभाँवनो ।
प्राण प्रीतम कृपा पंथ निहारनो सुख पाँवनो ।।

जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि०
३६, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता-७